इकाई 17 लिपियों का विकास

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 लेखन की उत्पत्ति

- 17.2.1 पौराणिक धारणा
- 17.2.2 विदेशी अनुसंधान
- 17.2.3 विदेशी मतों की परीक्षा
- 17.2.4 ब्राह्मी लिपि की सेमेटिक उत्पत्ति का खंडन
- 17.2.5 ब्राह्मी अक्षरों की स्वतंत्रता
- 17.2.6 भारत में लेखन का प्राचीन प्रचलन
- 17.2.7 प्राचीन ग्रंथ लिपिबद्ध न मिलने के कारण
- 17.2.8 संख्या और अंक
- 17.2.9 बौद्धकाल के उल्लेख
- 17.2.10 परवर्ती प्रमाण
- 17.2.11 ब्राह्मी लिपि संबंधी निष्कर्ष

17.3 खरोष्ठी लिपि

17.4 देवनागरी तथा अन्य लिपियाँ

- 17.4.1 नागरी लिपि
- 17.4.2 नागरी लिपि के सुधार का इतिहास तथा इसमें परिवर्तन संबंधी सुझाव

17.5 सारांश

17.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.7 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन पश्चात आपः

- लिपि को जान पाएँगे।
- लेखन कला की उत्पत्ति और विकास को जान पाएँगे।
- लिपियों के विकास को शब्दों में निबद्ध कर सकेंगे।
- देवनागरी लिपि में परिवर्तन संबंधित सुझावों का ज्ञान कर पाएँगें।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

17.1 प्रस्तावना

भाषा का संबंध ध्वनियों से है। भाषा सूक्ष्म है ,जबकि लिपि स्थूल है। भाषा का ही स्थूल रूप लिपि है। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है ,उसके मन में सदैव अनगिनत प्रश्न उठते हैं। इसी क्रम में जब वह लिपि के इतिहास और विकास की उत्पत्ति और विकास के विषय में चिंतन करता है तो पाता है कि लिपि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई यह अत्यंत ही गूढ़ विषय है, जिसका अध्ययन आपको प्रस्तुत इकाई में करना है। प्रस्तुत इकाई में आप लेखन कला की उत्पत्ति, विकास और विविध लिपियों के विषय में अध्ययन करेंगे।

17.2 लेखन की उत्पत्ति

संदेश को पहुँचाने के लिए चित्र संकेत और आकृतियों का उपयोग कई हजार साल से होता आ रहा है परन्तु उसे लिपि तब तक नहीं कहीं जा सकता जब तक की विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कुछ औपचारिक चिह्नों एवं प्रतीकों की नियमावली न बनाई जाए।

ऐसी एक संरचना रातों रात नहीं उत्पन्न हो सकती और लिपि का इतिहास एक बहुत लंबे, धीमी गति से चलने वाली और बेहद पेचीदा प्रक्रिया है। यह एक बेहद रोचक कहानी है जो कि मानव इतिहास के साथ जुड़ी हुई है और जिसके अभी भी कई कड़ियों का पता नही है।

जहाँ तक हमें पता है यह प्रक्रिया प्राचीन मेसोपोटामिया से शुरू हुई थी। यह क्षेत्र टिगरिस और यूफ्रेट्स नदियों के बीच की क्षेत्र हैं तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व यह क्षेत्र सुमेर और अकड़ में विभाजित हो गई।

यद्यपि सुमेरी और अकड़ी एक ही भौगोलिक क्षेत्र में मिलनसार रूप से रहते थे परन्तु वे दो ऐसी भाषाएँ बोलते थे जोकि मूर्त रूप में काफी भिन्न है जैसे की अंग्रेजी और चीनी भाषा।

यह दोनों सभ्यताएँ काफी छोटी ढाँचागत समाज में रहती थी जोकि बेबीलोन जैसे बड़े शहर के आसपास होती थी और उनकों उनके शासक एवं देवी देवताओं से संरक्षण प्राप्त था। शाही कोर्ट के अधिकारी और पुरोहित और व्यापारियों को छोड़ मेसोपोटामिया की अधिकांश आबादी चरवाहों और किसानों की थी। उर्क के विशाल मंदिर समूह कि पुरातत्व अन्वेषण से प्राप्त हुई सुमेरी सभ्यता के पहले शिलालेख जोकि मिट्टी के खंड के रूप में प्राप्त हुई उससे इसी बात की पुष्टि होती है। मिट्टी के खण्डों में लिखित रूप से मंदिर के अभिलेख हैं जिनमें अनाज की बोरियों की सूची और मवेशियों की गिनती की विवरण है।

इससे यह पता चलता है की सबसे पहले लिखित संकेतों में कृषि की विवरनी थी। बाद के मिट्टी के खण्डों पर सुमेरी लोगों के सामाजिक संरचना की सूचना एवं विवरण मिलते हैं जैसे कि जो समुदाय लगाश मंदिर में काम किया करता था। उसमें 18 लोग थे जो जो कि ब्रेड या रोटी बनाते थे एवं 31 लोग मदिरा बनाने का काम करते थे तथासात गुलाम थे और एक लौह धातु का काम करते था। अन्य दस्तावेजों से यह भी पता चलता है कि सुमेरी लोग ना सिर्फ चाँदी को अपने व्यापार में उपयोग करते थे अपितु उन्होंने पैसे को ब्याज पर देने की भी व्यवस्था कर रखी थी, सुमेरी मिट्टी के अभिलेख जिनमें एक तरफ शिक्षक का पाठ है और दूसरी तरफ छात्र की

प्रति है। यह पता चलता है कि उन लोगों ने क्यूनिफॉर्म या किलाकारी लिपि को कैसे विकसित किया।

विद्वानों के अनुसार इनमें से पहले शिलालेख मैं हमें साधारण चित्र मिलते हैं जोकि किसी वस्तु के प्रतिबिम्ब है। जैसे कि गया के सर की आकृति से गाय के बारे में बोध होता है। इन्हें पिक्टोग्राम भी कहा जाता है जिसमें एक चिन्ह के द्वारा एक वस्तु का बोध होता है।

कई सारे पिक्टोग्राम को मिलाकर एक विचार को दर्शाने की कला को इडियोग्राम कहा जाता है। उदाहरण के रूप में पहाड़ों के प्रतीक के साथ औरत के प्रतीक त्रिभुजाकार आकृति को समावेश को नारी गुलाम जो कि पहाड़ों के दूसरी ओर से आई है के रूप में देखा जाता है। विशेषज्ञों ने कुछ ऐसे 1500 पिक्टोग्राम की पहचान की है। 2900 बी. सी. के दौरान पिक्टोग्राम्स मैं एक बहुत रोचक विकास हुआ। जब गोलाकार चिह्न पिक्टोग्राम से गायब हो गए। इसका कारण बहुत साधारण सा था। मेसोपोटामिया के नदी के अगल बगल की जो मिट्टी थी उनमें चिकनी मिट्टी की मात्रा बहुत अधिक थी। इस वजह से गोलाकार आकृतियाँ गीले चिकनी मिट्टी पर बनाना मुश्किल होता था इस वजह से उनकी जगह आकृतियों और प्रतीक चिन्हों में सीधी रेखा ने ले ली।

जिन लेखकों ने शिलालेखों को बनाया उन्होंने मिट्टी के खण्डो को इस्तेमाल किया जिस पर उन्होंने आकृतियों एवं वस्तुओं को उकेरा। सुमेरिओ ने आकृति काटने के लिए धार वाली वस्तुओं का प्रयोग किया जोकि आज की हमारी कलम के पूर्वज है। जो आकृतियाँ उकेरी गई वह किले के समान थी जिससे कि इस लिखावट की शैली का नाम किलाकारी या क्यूनिफोरोम जोकि लैटीन में क्यूनियस शब्द से पड़ा।

सैकड़ों सालों में लिपि में बहुत से परिवर्तन आए हैं जिनमें की पिक्टोग्राफिक शैली पूरी तरह से समाप्त हो गई। हमें यह नहीं समझना चाहिए की संकेतों के परिवर्तन में अलग–अलग लेखकों के बुद्धि विवेक से परिवर्तन हुआ है। संकेतों के समूह के रूप में हमें कई अवशेष मिले हैं जोकि लेखकों के लिए एक शब्दकोश का काम करती थी और शैली सीखने में मदद करती थी। हर एक संकेत के कई सारे अर्थ होते थे और प्रसंग के अनुरूप उनके अर्थ निकलते थे। उदाहरण के लिए मनुष्य के पैर की प्रतीक का अर्थ चलना भी होता था एवं खड़ा होना भी और आगे बढ़ना भी होता था ,हर एक अलग ध्वनि होती थी। चूँकी एक चिन्ह कई सारे अर्थ दर्शाते थे इस कारण धीरे–धीरे चिन्ह की संख्या घटती गई और एक समय में सिर्फ 600 चिन्ह ही प्रचलन में थे। यद्यपि यह भी लेखकों के लिए एक बहुत बड़ी संख्या थी जिसको याद करके लिखना पड़ता था।

सुमेरी लोगों की एक और विलक्षण उपलब्धि थी, ध्वनि को लिपि से जोड़ना। सुमेरी और मिस्त्र के लोग ने एक शैली का इस्तेमाल किया जिसमें की एक पिक्टोग्राम से किसी वस्तु को न जोड़कर उन ध्वनिओं को जोड़ना जिससे कि वह नाम बन गए, जैसे कि मान लीजिए रेलगाड़ी शब्द के लिए रेल और गाड़ी के अलग–अलग चित्र को एक साथ लगाना। यह स्वानिम की प्रयोग का सबसे सरल उदाहरण था, जिसको समयानुसार काफी विस्तृत तरीके से विकास किया गया। सुमेरी लेखक संकेत को दो तरह से प्रयोग किया करते थे जिससे ये निश्चय हो जाता था कि इस संकेत को स्वनिम के रूप में प्रयोग करना है या पिक्टोग्राम के रूप में। अकड़ी यहूदी पूर्वज अरब के और हिब्रू धीरे–धीरे मेसोपोटामिया की शक्तियाँ बन गए। उनके प्रभाव से सन 2020 ई0 के बाद अकड़ी भाषा मुख्य रूप सपोर्ट अमिया की भाषा बन गई किलाकरी लिपि के पूरी तरह से उजागर हो जाने से एवं विकसित होने पर दूसरी भाषाओं को भी मूर्त रूप देना बहुत आसान हो गया। सुमेरी भाषा के प्रचलन से निकल जाने की वजह से

उसको धार्मिक भाषा के रूप में संरक्षण प्राप्त हुआ जैसे कि लैटिन जोकि कैथोलिक चर्च के लिए हुआ करती थी। समय के साथ यह लिपि संरचना बेहद शक्तिशाली राज्य सीरिया और बेबीलोन के साम्राज्य की हुई जोकि ईसा पूर्व 18 शताब्दी की थी।

लिपि जो कि एक बहुत ही साधारण से हिसाब किताब रखने मैं उपयोग होती थी उसे मेसोपोटामिया के लोगों ने अपने विचारों को आदान प्रदान करने के माध्यम एवं अपनी भाषा को रिकॉर्ड करने के लिए उपयोग में लाया। बोली के अलावा लिखित रूप में सूचना का आदान प्रगद करने की यह नई पद्धति थी जोकि प्राचीन सुमेरियो, अकड़ी, बेबिलोनिया के वासियों और असीरियन अपने दैनिक जीवन के सूचना आदान–प्रदान के लिए विकसित की थी। किलाकारी लिपि का आविष्कार धार्मिक अनुष्ठानों के मंत्रों को एवं पवित्र बोलियों के रखरखाव मैं बेहद मददगार साबित हुआ।

प्राचीन सुमेरिया ने गिलगामेश नामक रचना कि जिसमें एक सूर्य देव की बात हुई है जो की दो तिहाई भगवान और एक तिहाई मानव था यह दंतकथा पहले तो जुबान से प्रचलित हुई और इसके कई सारे लिखित अंश असीरियन राजा असुरबनीपाल के निनेहवेह में स्थित ग्रंथालय से प्राप्त हुए।

किलाकरी लिपि को पढ़ना और लिखना मेसोपोटामिया के लोगों के लिए भी बहुत आसान नहीं था। यह एक ऐसी कला थी जो कि कुछ चुनिंदा लोग थे जो संकेतों और चिह्नों को समझ और अंकित कर पाते थे और जानते थे कि एक चिह्न उसके अनेक अर्थों में से किस अर्थ को चुनेगा? बेबीलोनिया और असीरिया के लिपिक की एक अलग ही जाति थी जो कि उस समय के राज्यपाल के लोगों से भी ज्यादा शक्तिशाली थे। लिपिकों की पाठशाला बहुत ही व्यवस्थित और अत्यंत अनुशासित थी।इसका पता मेसोपोटामिया के विभिन्न दस्तावेजों से पता चलता है। लिखने की कला जानना अपने आप में बेहद शक्तिशाली होने जैसा था। यह कला एक धरोहर के रूप में रहने वाली थी।

मेसोपोटामिया की लिखने की कला शैली को कई भाषाओं को मूर्त रूप देने के लिए प्रयोग किया जाता था और इसके परिणाम दूर–दूर तक होते थे। सुमेरियन और अकड़न भाषाओं को लिखने में प्रयोग करना और बाद में एलेमाइट जो कि एल्म की भाषा थी ,जिसकी राजधानी सुसा थी (आज के समय की ईरान) में किलकारी लिपि में लिखी जाती थी। आश्चर्यजनक रूप से अनातोलिया के हिटटाइट लो (1400 सौ से 1200 ईसा पूर्व) ने भी सरलीकृत किलाकारी लिपि को अपनाया था (आज के समय की तुर्की) जोकि एक बहुत ही समृद्ध और ताकतवर सभ्यता थी जबकि उनकी अपनी भाषा Indo European प्रजाति की थी और वही अपनी एक अलग चित्र रूपी लिपि भी विकसित कर चुके थे। एक और उदाहरण के तौर पर प्राचीन पर्शियन को लिया जा सकता है। यह भाषा पर्शियन साम्राज्य की थी और यह किलाकारी लिपि में लिखी जाती थी जो कि तीसरी और पहेली शताब्दी बीसी मैं टिगरिस और यूफ्रेट्स के मध्य क्षेत्र में किला करी लिपि का जन्म हुआ जोकि पलेस्टाइन जितने सुदूर दक्षिण में फैला और सुदूर उत्तर आर्मीनिया तक में जहाँ की यह कन्नानाइट और यूर्टिन नाम से जाने जाते थे। किलाकरी लिपि को अगर मध्य पूर्व देश एवं उसके निकटवर्ती देश नहीं अपनाते तो यह इतिहास के पन्नों पर आज तक कभी दर्ज न रह पाती। किलाकारी लिपि जब मैसोपोटामिया में फैल रही थी तब पास के मिस्त्र और सुदूर चाइना में भी लिपियों का विकास हो रहा था। लोगों को लिपि काफी मददगार एवं दैवी उपहार की तरह लगने लगी थी जिससे कि वह अपने इतिहास को पत्थर, चिकनी मिट्टी और पैपीरस के पत्ते पर लिख सकते थे।

किला करी लिपि होलाग्राफिक स्क्रिप्ट में लिखी जाती थी। इसका रूप प्राचीन मिस्त्र के देवियों से मिलता था।

भारतीय भाषाओं के विकास के साथ लिपियों के विकास का प्रश्न भी प्रासंगिक है। भारतवर्ष में लिपि या लेखन की उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई, यह भारतीयों का अपना आविष्कार है या विदेशी अनुकृति है, लेखक के आरंभिक साधन क्या थे और लिपिकला का विकास किससे हुआ आदि अनेक प्रश्न उठते हैं, जिनका ठीक–ठीक निर्णय हो जाना आवश्यक है। अब तक इस संबंध में किए गए अनुसंधान अधूरे हैं, वे कब तक पूरे होंगे, पूरे होंगे भी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। हमारे लिए उचित है कि इस विषय की आज तक की खोज का परिचय प्राप्त कर लें और इस समस्या के सभी पहलुओं को समझ लें कि इसके समाधान में यथासंभव योग दे सकें। वास्तव में लिपि का प्रश्न अब तब एक समस्या या पहेली ही बना हुआ है।

17.2.1 पौराणिक धारणा

इस प्रश्न पर सम्यक् रूप से विचार करने में दो बातें विशेषतः बाधक हो रही हैं। एक तो हमारे बीच फैली हुई यह धारणा कि लिपि अनादि है, वह स्वयं ब्रह्माजी की बनाई है और सृष्टि के आरंभ से ज्यों की त्यों चली आ रही है। इसी धारणा के परिणामस्वरूप इसी से मिलता–जुलता हमारा यह विश्वास है कि लिपि तंत्रशास्त्र का विषय है, जो स्वयं अनादि है और जिसका प्रणयन मनुष्य द्वारा नहीं हुआ। इस धारणा और विश्वास के स्वरूप, उसके तथ्यातथ्य और फलाफल पर भली– भाँति विचार करने की आवश्यकता है।

17.2.2 विदेशी अनुसंधान

दूसरी मुख्य बाधा भारतीय अनुसंधान का कार्य करनेवाले विदेशी विद्वानों की यह मूल मनोवृत्ति रही है कि भारतवर्ष की सभ्यता न तो अधिक प्राचीन है और न मौलिक ही। इस मनोवृत्ति को लेकर जो कुछ कार्य किया गया है, वह कहाँ तक प्रामाणिक होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश एक लंबी अवधि तक हम विदेशी सत्ता से शासित रहे हैं। हमारे विदेशी महाप्रभुओं की सभ्यता और संस्कृति जब स्वयं ही अधिक प्राचीन और मौलिक नहीं थी, तो हम दासों की कहाँ से मानी जाती। हममें स्वतंत्र संस्कृति निर्माण की प्रतिभा आई कहाँ से, हमारे स्वामी यूनान और रोम की जिन सभ्याताओं का अपने को उत्तराधिकारी मानते थे, उनका समय ईसा के हजार वर्ष पूर्व के भीतर का ही है। तो फिर, भारतीय सभ्यता उससे पुरानी कैसे मान ली जाती? फलतः हमारे वेद, हमारे शास्त्र, हमारे काव्य, हमारा इतिहास, हमारी लिपि, हमारा सब कुछ परवर्ती और विदेशी आधार पर बना मान लिया गया। सब नहीं, किंतु अधिकांश अनुसंधाताओं का यही मनोभाव रहा करता है, ऐसी अवस्था में उनके निष्कर्ष कहाँ तक निष्पक्ष होंगे? हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रश्न लिपियों का है। अतः हम उसी की बात कहेंगे। भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में अधिकतर विदेशी विद्वानों का मत अब तक यही रहा है कि भारत में लिपि की उत्पत्ति अधिक प्राचीन नहीं है। वैदिक काल में उसका परिज्ञान भारतीयों को न था। भारत की दोनों प्राचीन लिपियों ब्राह्मी और खरोष्ठी प्रथम बार अशोक के शिलालेखों में मिलती हैं, जिनका समय ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी था। अतः ये लिपियाँ इस समय के कुछ ही पूर्व, चौथी या पाँचवीं शताब्दी ई. पू. की आविर्भूत हुई होंगी और ये लिपियाँ स्वतंत्र नहीं हैं। ये दोनों ही विदेशी लिपियों की अनुकृति हैं। सेमेटिक लिपियों की वंशज हैं। भारतीयों ने एशिया के पश्चिम खण्ड के फिनिशियन लोगों से लिखना सीखा।

17.2.3 विदेशी मतों की परीक्षा

आरंभ में ही हम कह देना चाहते हैं कि भारतीय लिपि को विदेशी सिद्ध करने और उसकी प्राचीनता को अमान्य करने में तो अधिकांश विदेशी विद्वान् एक मत हैं, किंतु भारत की आदिम ब्राह्मी लिपि किस विदेशी लिपि की अनुकृति है, और किस समय के आस–पास यह अनुकरण हुआ, इन तात्विक प्रश्नों पर किन्हीं भी दो विद्वानों का मत नहीं मिला। इन दोनों आरोपों की संदिग्धता इतने से ही परिलक्षित हो जाती है।

उदाहरणार्थ कुछ विद्वान् ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हिटाइट मिस्र की, कुछ क्यूनिफार्म असीरिया की, कुछ फोनिशियन अथवा उसकी हीरोग्लाइफिक शाखा से, कुछ आर्मेइक और कुछ खरोष्ठी लिपि से मानते हैं। आइजक टेलर का मत है कि इनमें से कोई भी लिपि ब्राह्मी से नहीं मिलती। अतः उसकी उत्पत्ति किसी अज्ञात लिपि से हुई होगी, जिसका अब तक पता नहीं चला। संभवतः वह ओमन, हंड्रमांट या ओर्मज्ज के खंडहरों की किसी विलुप्त लिपि की संतान है। राइस डेविस इस मत को भी प्रामाणिकता नहीं देता। उसका कथन है कि यूप्रेटिस नदी के तराई की किसी प्राचीन लिपि से ब्राह्मी लिपि का आविर्भाव हुआ होगा।

इसी प्रकार समय के संबंध में भी अत्यधिक मतवैभिन्य है। जहाँ एक ओर बर्नेल आदि अनेक विद्वान् अशोक के कुछ ही पूर्व ब्राह्मी लिपि का प्रचलित होना ठहराते हैं, वहीं प्रसिद्ध विदेशी अनुसंधानक वेबर लिखता है कि संभवतः भारतीयों ने सेमेटिक अक्षरों के आधार पर ब्राह्मी की सृष्टि ईस्वी पूर्व 1000 के आसपास की होगी।

इन मत–मतांतरों के आधार पर भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में कोई प्रामाणिक निष्कर्ष निकालना अत्यंत कठिन है। फिर, जब हम उन तर्कों या प्रमाणों की ओर ध्यान देते हैं, जिनके आधार पर ये स्थापनाएँ की गई हैं; तब इनकी प्रामाणिकता और भी डावाँडोल हो जाती है, और हम मौन साधकर रह जाते हैं। कभी–कभी तो ऐसी युक्तियाँ उपस्थित की जाती हैं, जिन पर किसी प्रकार विश्वास नहीं किया जा सकता, जो एकदम भ्रांत हैं।

17.2.4 ब्राह्मी लिपि की सेमेटिक उत्पत्ति का खंडन

उदाहरण के लिए ब्राह्मी लिपि की सेमेटिक उत्पत्ति का एक मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि आरंभ में ब्राह्मी लिपि भी सेमेटिक लिपियों की ही भाँति दाहिने से बाएँ लिखी जाती थी और कुछ समय पश्चात् वह दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाने लगी। इसका एकमात्र मुख्य प्रमाण एरण का सिक्का है, जिसमें ब्राह्मी अक्षर दाहिनी ओर से बाईं ओर को पढ़े जाते हैं। किंतु यह तो स्पष्टतः सिक्के की मुहर–खुदाई की गलती है, जैसी कि भारतीय सिक्कों में अनेक बार पाई गई है। मुहर बनाने में अक्षरों की उल्टे क्रम से लिखना भूल जाने पर यह त्रुटि प्रायः रह जाती है। भारतीय ही नहीं विदेशी सिक्कों में भी, प्राचीन ही नहीं नवीन सिक्कों में भी यह स्वाभाविक त्रुटि अनेक बार पाई गई है।

बूलर ने ब्राह्मी लिपि को विदेशी सेमेटिक लिपि की अनुकृति बताते हुए जो पुस्तक लिखी है, उसे देखने पर प्रकट होता है कि उनके तर्क, योजनाएँ और युक्तियाँ एकदम संदेहास्पद हैं और प्रामाणिकता से बहुत दूर हैं। वेबर और बूलर पहले यह निष्कर्ष बना लेते हैं कि ब्राह्मी लिपि विदेशी अनुकरण है, फिर उसे सिद्ध करने के लिए तर्कों की योजना करते हैं। ऐसा करने में उनसे अन्याय की ही आशा की जा सकती है। बूलर ने फोनीशियन अक्षरों से ब्राह्मी की उत्पत्ति सिद्ध करते हुए दो मोटी बातों का ध्यान नहीं रखा। एक तो उन्होंने समान उच्चारण वाले अक्षरों का आधार न रखकर असमान उच्चारण वाले अक्षरों को भी अनुकरण का मूल मान लिया है, जो संभव नहीं है, अथवा

अत्यंत संदिग्ध है। अनुकरण समान उच्चारण के आधार पर ही हो सकता है, अन्य किसी आधार पर नहीं और फिर उसने इन दोनों लिपियों के इस मौलिक भेद का ध्यान नहीं रखा कि सेमेटिक अक्षरों का ऊपरी भाग मोटा और नीचे का भाग महीन या नुकीला होता है। किंतु, ब्राह्मी लिपि के अक्षर ठीक इसके विपरीत गुणवाले होते हैं।

दूसरी बात यह है कि उसने दोनों लिपियों की तुलना करते हुए मूल फोनीशियन अक्षरों को प्रत्येक प्रकार से उलटा–पलटा है, उनके मूलरूप में नहीं रखा। जब अनुकृति ही करनी थी, तो अक्षरों का स्वरूप बदलने की क्या आवश्यकता पड़ी थी।

तीसरी बात यह है कि बूलर केवल ब्राह्मी लिपि को ही नहीं खरोष्ठी को भी फोनीशियन का अनुकरण मानते है। ऐसी अवस्था में ब्राह्मी और खरोष्ठी के बीच जो समानता होनी चाहिए, वह क्यों नही पाई जाती? अशोक के शिलालेखों में दोनों ही लिपियों का व्यवहार हुआ है। किंतु, दोनों में जमीन–आसमान का अंतर है।

17.2.5 ब्राह्मी अक्षरों की स्वतंत्रता

इन सब तर्कों के बाद जब हम यह देखते हैं कि ब्राह्मी अक्षरों की संख्या फिनिशियन या किसी भी सेमेटिक लिपि के अक्षरों की संख्या में कहीं अधिक है, और उनको सजाने की, क्रमबद्ध करने की ,परिपाटी भी स्वतंत्र है। वे ध्वनि पर आधारित हैं और वे अक्षर वर्णमूलक हैं, चित्रमूलक नहीं। इस लिपि में मात्राएँ स्वतंत्र होती हैं और अक्षरों के साथ लगती हैं। मात्राओं के स्व और दीर्घ आदि भेद भी होते हैं, जो अन्य लिपियों में नहीं पाए जाते। तब आप से आप यह प्रश्न होता है कि भारतीय जब अपने अक्षरों का इतना स्वतंत्र विकास कर सकते थे तो उन्हें कुछ थोड़े से विदेशी अक्षरों की अनुकृति करने में क्या लाभ दिखा था।

सारांश यह कि ब्राह्मी लिपि को विदेशी सिद्ध करनेवालों के तर्क सब तरह से अपूर्ण और संदिग्ध हैं तथा कहीं भी विश्वास नहीं उत्पन्न करते। यदि ऐसे तर्कों को आधाररूप लिया जाय तो संसार के किसी भी भूभाग में प्रचलित लिपि की अनुकृति बनायी जा सकती है। किंतु, ऐसा करना औचित्य और प्रमाण के सर्वथा विरुद्ध होगा।

17.2.6 भारत में लेखन का प्राचीन प्रचलन

नवीनतम अनुसंधान जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में हुए हैं, भारत में लिपि की अत्यंत प्राचीनता (ई. पू. 3000–4000 वर्ष पीछे) का परिचय देते हैं। किंतु, लिपियों की खोज के परिणाम का अब तक निर्णय नहीं हुआ। अतः संप्रति उक्त आधार की चर्चा नहीं की जायगी। उसे छोड़कर अब अन्य साधन का विचार करते हुए, हमें यह देखना है कि भारतवर्ष में लेखन का प्रचलन किस समय से आरंभ हुआ। इस संबंध में सबसे पहली बात यह ध्यान देने की है कि इस देश में लिखने के साधन प्रचुर मात्राा में और अनेक प्रकार के पाए जाते थे। यथा–ताडपत्र, भूर्जपत्र और रुई या कपड़े के बने कागज। लेखनी वर्णन के लिए भी यहाँ कई वस्तुओं का प्रयोग किया जाता था और अक्षर काटने के लिए शलाकाएँ भी काम में आती थी। कई रंगों की रोशनाई बनाई जाती थी। कागज को चिकना करने के लिए हाथीदाँत, शंख आदि का व्यवहार होता था।

17.2. प्राचीन ग्रंथ लिपिबद्ध न मिलने के कारण

किंतु मिस्र देश में जहाँ ई. पू. दो हजार वर्ष पूर्व के लिखे अक्षर प्राप्त होते हैं, वहाँ भारत में इतने पुराने ग्रंथों का न मिलना एक आकस्मिक बात है। इसका मुख्य कारण भारत की उष्ण जलवायु है, जिसमें लेखाधार नष्ट हो जाते हैं, टिकाऊ नहीं होते। दूसरा मुख्य कारण ऐतिहासिक है। विदेशी आक्रमणों के कारण यहाँ की बहुत सी

प्राचीन सामग्री नष्ट–भ्रष्ट और विलुप्त हो गई है। लेखनी की वेदकालीन उत्पत्ति तथापि इस बात में संदेह नहीं है कि भारतीय वेद इस देश के ही नहीं संसार भर के आदि ग्रंथ हैं और इतना विशाल वैदिक साहित्य बिना लिपिबद्ध हुए स्थिर नहीं रह सकता था। यद्यपि वेदों के श्रुति नाम के आधार पर यह कहा जाता है कि वेदों का लेखन नहीं हुआ था। वे एक कंठ से दूसरे कंठ में होते हुए मौखिक रूप से चले आ रहे थे और प्राचीन लिखित ग्रंथ का अनादर करने की परिपाटी भी पूर्वकाल से अब तक प्रचलित है। किंतु, इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि लेखन की अपेक्षा कंठस्थ करने की परिपाटी अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। स्वयं बूलर लिखते हैं कि यह अनुमान अकाट्य है कि वैदिक काल में भी लिखित ग्रंथों का उपयोग शिक्षा तथा अन्य कार्यों में हुआ करता था। बोधलिंग नामक विद्वान् का मत है कि साहित्य के प्रचार के लिए नहीं, किंतु नए ग्रंथों के प्रणयन के लिए लिपि का उपयोग किया जाता है।

वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथ मिलकर बृहत् आकार धारण करते हैं, जो बिना लिपिबद्ध हुए केवल मौखिक आधार पर नहीं रह सकते थे। पद्य और गीत ही नहीं, गद्य अवतरणों का बिना लिखे प्रचलन होना असंभव सा रहता है। ऐसी अवस्था में वैदिक गद्य, लेख रूप में अवश्य आया होगा। वैदिक छंदों की परिगणना की गई थी, यह कार्य भी लेखन सापेक्ष्य है। वेदों में लिंग और वचन आदि के भेदों का उल्लेख है, जिससे वैदिक व्याकरण का भी आभास मिलता है। व्याकरण का लिपिबद्ध होना अनिवार्य है। पारिभाषिक शब्दों की चर्चा बिना लिखित आधार के नहीं हो सकती।

17.2.8 संख्या और अंक

वेदों में संख्याओं की यथेष्ट परिगणना है। यजुर्वेद संहिता में गणक का उल्लेख है, जिसका अर्थ गणित करनेवाला ज्योतिषी होता है। उसमें दश, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, मध्य, अंत और परार्ध तक को संख्याएँ मानी गई हैं, जो क्रमशः दस से दस खरब तक होती हैं। इन संख्याओं का ज्ञान लिखे–पढ़े व्यक्तियों को ही हो सकता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक आर्यों को लिखना–पढ़ना आता था और वे अक्षरों से ही नहीं अंकों से भी संभवतः परिचित थे।

17.2.9 बौद्धकाल के उल्लेख

वैदिक–काल के पश्चात् बौद्धकाल में तो लेखन–कार्य व्यवस्थित रूप से प्रचलित हो गया होगा। विनयपिटक में, जो महात्मा बुद्ध के समय या उसके कुछ ही पश्चात् की कृति है, लेख अथवा लेखन कला की प्रशंसा की गई है। जातक ग्रंथों में पोत्थक–पुस्तक का तथा राजकीय–पत्रों, व्यक्तिगत पत्रों, ऋण–पत्रों आदि का उल्लेख किया गया है। पाणिनि के व्याकरण के पूर्व यास्क का निरुक्त लिखा गया, जिसमें अनेकानेक पूर्ववर्ती वैयाकरणों का उल्लेख है यथा औदुंबरायण, कौष्टुकी, शाकपूर्णि, शाकटायन आदि। पाणिनि में इनमें से गार्ग्य, शाकटायन, गालव और शाकल्य के नाम मिलते हैं। यह संभव नहीं कि इन पूर्ववर्ती वैयाकरणों की रचना अलिखित रही हो क्योंकिउनके मतों का हवाला मौखिक आधार पर कोई कैसे दे सकता है ? महाभारत, स्मृति, कौटिल्य–अर्थशास्त्र और कात्यायन–कामसूत्र आदि ग्रंथों में लेखन–कार्य की स्थान–स्थान पर चर्चा है।

17.2.10 परवर्ती प्रमाण

यूनानी निआर्कस जो प्रसिद्ध सम्राट् अलेकजेंडर का सेनापति था और भारतवर्ष आया था, कहता है कि रुई को कूट–कूटकर कागज बनाना और उस पर लिखना भारतवासी भली–भाँति जानते हैं। मेगस्थनीज ने धर्मशालाओं तथा दूरी का पता बतानेवाले पाषाणों का उल्लेख किया है, यथा जन्मपत्रा और पंचांगों के उपयोग की बात लिखी है और यह भी लिखा है कि न्याय स्मृति के अनुसार होता है। निश्चय ही यह स्मृतियाँ लिखित ग्रंथ के रूप में रही होंगी।

ईसवी पूर्व पाँचवीं शताब्दी के आसपास से ब्राह्मी अक्षरों में लिखे शिलालेख अजमेर के निकट बड़ली और नेपाल की तराई के पिप्रावा ग्राम में पाए गए हैं। इस समय तक इस लिपि का परिपूर्ण विकास हो चुका था।

अशोक के शिलालेखों में यह लिपि सार्वदेशीय बन चुकी थी और इसमें स्थानीय भेद भी आने लगे थे, जो लिपि की विकसित अवस्था के द्योतक हैं।

पुराणों में उल्लेख है कि पुस्तक लिखकर दान करना पुण्य का कार्य है। चीनी यात्री हुएन्–त्साँग बीस घोड़ों पर 657 पुस्तकें लादकर भारत से चीन लौटा था। निश्चय ही ये पुस्तकें उसे गृहस्थों, भिक्षुओं, राजाओं और मठाधीशों से दान में मिली होंगी। इससे सूचित होता है कि पुस्तक–लेखन की प्रचुरता भारतवर्ष में उसी समय हो चुकी थी, जब विदेशों में वह विरलता से प्राप्त थी।

17.2.11 ब्राह्मी लिपि संबंधी निष्कर्ष

उपर्युक्त साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि भारत की ब्राह्मी लिपि एक स्वतंत्रा लिपि है। उसका प्रादुर्भाव वैदिक काल में ही भारतीय आर्यों द्वारा हुआ था। हम जहाँ एक ओर यह मानने को तैयार नहीं हैं कि ब्रह्माजी ने अपने हाथ ब्राह्मी लिपि का निर्माण सृष्टि के आदि में किया, वहीं हम यह भी नहीं स्वीकार कर सकते कि यह लिपि हमने विदेशियों से सीखी और इसका प्रचलन उस समय हुआ जब पश्चिमी एशिया और मिस्र में लेखन–कार्य एक सहस्र वर्ष या उससे भी अधिक काल से चल रहा था।

तंत्र–ग्रंथों में देवनागरी वर्णमाला का जो विवरण मिलता है, उसके आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि हमारी वर्णमाला अनादि है; हमें तंत्र–ग्रंथों के निर्माण के समय की खोज करनी चाहिए, तब हम देवनागरी लिपि के संबंध में अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

.3 खरोष्ठी लिपि

जहाँ तक खरोष्ठी लिपि का संबंध है, यह भी अशोक–काल के पूर्व भारतवर्ष में प्रचलित हो चुकी थी। यह सेमेटिक लिपियों की शैली पर अवश्य चली थी, किंतु इसका भी स्वतंत्र विकास भारतभूमि में हुआ था। इसका प्रसार भारत के बाहर दूर–दूर तक था और यूनानी सिक्कों में भी इस लिपि का प्रचलन देखा जाता है। खरोष्ठी लिपि विदेशियों के भारतवासियों से संसर्ग होने पर बनी। यह भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत से लेकर सुदूर ईरान तक फैली थी। वह व्यापारियों और अहलकारों की लिपि थी। उस समय भारत का व्यापार उत्तर–पश्चिमी मार्ग से बहुत अधिक हुआ करता था। इस लिपि में ब्राह्मी लिपि की भाँति स्वरों तथा उनकी मात्राओं में स्व–दीर्घ का भेद न था और संयुक्ताक्षर भी बहुत कम व्यवहृत होते थे। यह लिपि ब्राह्मी लिपि की भाँति वैज्ञानिक न बन पाई, यद्यपि यह व्यवहार में बराबर आती रही और ईसा की

तीसरी शताब्दी तक इसका प्रचलन पंजाब आदि भारत के पश्चिमी प्रांतों में था। तत्पश्चात् यह धीरे–धीरे लुप्त हो गई और इसका स्थान ब्राह्मी लिपि ने ले लिया।

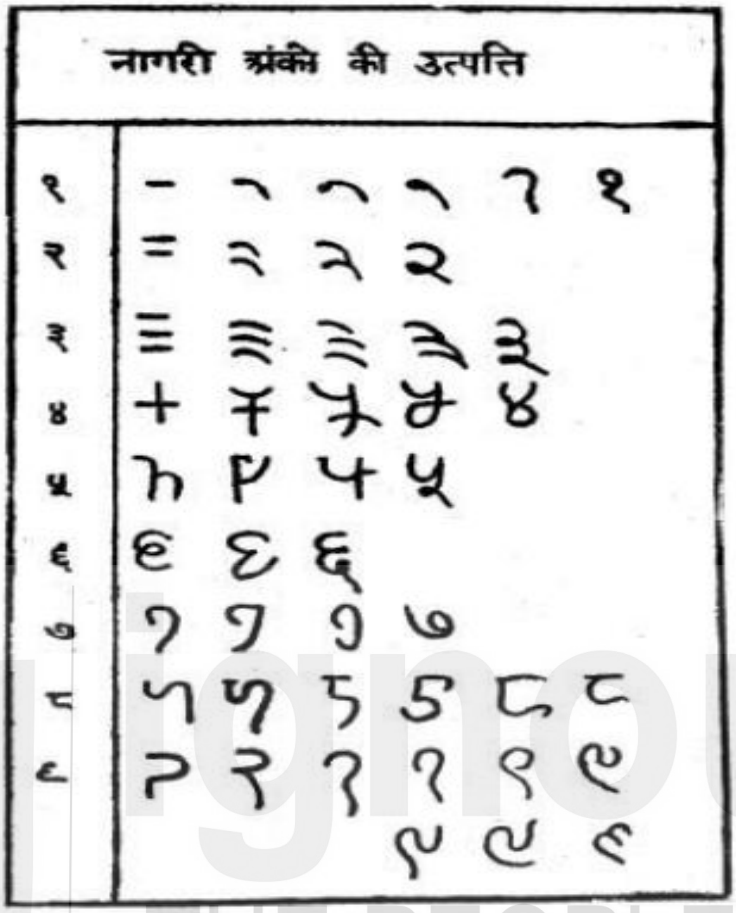

17.4 देवनागरी तथा अन्य लिपियाँ

भारत की वर्तमान सभी लिपियाँ ब्राह्मी लिपि की ही वंशज हैं। यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि इतने बड़े देश में सुदूर दक्षिण की लिपियाँ उत्तर

दूरस्थ लिपियों की सहोदरा भगिनी हों। किंतु, लिपिवेत्ताओं ने इस संबंध में शंका के लिए कोई स्थान नहीं रखा है। ब्राह्मी लिपि की दो प्रधान शाखाएँ मानी जाती हैं, एक उत्तरी शाखा और दूसरी दक्षिणी शाखा। समस्त भारत की वर्तमान लिपियाँ उर्दू को छोड़कर इन्हीं दोनों शाखाओं के अंतर्गत आती हैं।

भारतीयों लिपियों की उत्पत्ति और विकास के संबंध में ऊपर के विवरण के साथ कुछ चित्र देने भी आवश्यक हैं, जिनसे यह पता लग जाय कि –

1. ब्राह्मी लिपि किसी सेमेटिक लिपि की अनुकृति नहीं है।

2. भारत की वर्तमान लिपियाँ किस प्रकार ब्राह्मी लिपि से ही विकसित और अनुवर्तित होकर बनी हैं। ये ही दो मुख्य स्थापनाएँ भारतीय लिपियों के संबंध में हमें करनी थीं और इन चित्रों को देखने के पश्चात् पाठकों को इस विषय में दृढ़ निश्चय हो सकेगा। दोनों चित्रो जो दिए गए हैं, उनके लिए हम स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी के अत्यधिक आभारी हैं।

17. .1 नागरी लिपि

भारत के विभिन्न प्रदेशों की वर्तमान लिपियाँ ब्राह्मी से प्रादुर्भूत एवं विकसित हुई हैं। इन्हीं में से भारत की राष्ट्रीय लिपि नागरी है। चूँकि देववाणी संस्कृत को लिखने के लिए इसका प्रयोग होता है। अतः इसे देवनागरी नाम से भी अभिहित किया जाता है। यद्यपि संस्कृत के लेखन के लिए विदेश में रोमन लिपि का भी प्रयोग होता है तथापि संस्कृत के विदेशी अध्येता भी नागरी लिपि से पूर्णतया परिचित होते हैं। भारतीय संविधान के अनुसार नागरी में लिखित हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा है। जब से नागरी को यह पद मिला है तब से यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण लिपि बन गई है और इसे पूर्ण एवं वैज्ञानिक लिपि बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह प्रयत्न भी दो दिशाओं में हो रहे है। इनमें से एक तो यह है कि नागरी लिपि को विविध संकंतों से युक्त करके ऐसा रूप दिया जाय ताकि यह भारत के विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं की ध्वनियों के सही–सही लेखन में सक्षम हो जाय; दूसरा यह कि इसके वर्णों एवं प्रतीकों को मुद्रण यंत्र के अनुकूल बनाया जाय ताकि पुस्तकों के प्रकाशन में विशेष सुविधा हो। इन दोनों दृष्टियों से नागरी लिपि में सुधार के लिए जो प्रयत्न किए गए हैं उनके संबंध में यहाँ कुछ सुझाव बताए है–

7.4.2 नागरी लिपि के सुधार का इतिहास तथा इसमें परिवर्तन संबंधी सुझाव

कदाचित् 'अ' की बारहखड़ी – आ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै आदि, का प्रचलन सर्वप्रथम महाराष्ट्र के सावरकर बंधुओं ने किया था और व्यावहारिक रूप में इसे मराठी समाचारपत्रों ने अपनाया था। उधर हिंदी साहित्य सम्मेलन के सन् 1935 के 24वें अधिवेशन, इंदौर में, राष्ट्रपिता गांधीजी के सभापतित्व में नागरी लिपि में सुधार के लिए एक छोटी उपसमिति बनाई गई और श्री काका कालेलकर इसके संयोजक नियुक्त किए गए। बापू के मन में बहुत दिनों से यह बात चल रही थी कि किसी प्रकार यदि देवनागरी लिपि के वर्णों की संख्या में कुछ कमी हो जाय तो देश की साक्षरता में

उससे सहायता मिले। इसी के परिणामस्वरूप इस समिति का निर्माण भी हुआ। कई वर्षों के निरंतर उद्योग के बाद सम्मेलन ने निम्नलिखित 14 सुझावों को स्वीकार किया

1. लिखने में शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। छपाई में साधारण रीति से शिरोरेखा लगाना ही नियम रहे। किंतु विशेष स्थानों में अक्षरों की विभिन्नता प्रकट करने के लिए शिरोरेखाहीन अक्षर भी प्रयुक्त हो सकते हैं। सम्मेलन की सिफारिश है कि विशेष या छोटे अक्षरों में जहाँ शिरोरेखा होने से छपाई की स्पष्टता में कमी आ जाती हो, वहाँ शिरोरेखाविहीन अक्षरों का प्रयोग करना अच्छा होगा।
2. प्रत्येक वर्ण ध्वनि के उच्चारण–क्रम से लिखा जाय।
   क. जब तक कोई संतोषजनक रूप सामने न आये तब तक 'इ' की मात्रा अपवाद रूप से वर्तमान पद्धति के अनुसार ही 'ि लिखी जाय; यथा शिर।
   ख. ए, ऐ की मात्रायें वर्ण के ठीक ऊपर लगाई जायें। यथा -देवता, अनेक। ओ और औ भी ऊपर के सिद्धांत के अनुसार लिखे जायें; यथा-ओला, औरत।
   ग. उ, ऊ, ऋ की मात्रायें अक्षर के बाद आयें और पंक्ति में ही लिखी जायें। यथा-कुटिल, पूजा, सृष्टि।
   घ. अनुस्वार और अनुनासिक के चिह्न भी अक्षर के बाद ऊपर लिखे जायें। यथा-अंश।
   ङ. रेफ से व्यक्त होने वाला अर्द्ध 'र' उच्चारण–क्रम से योग्य जगह पर लिखा जाय। यथा-धर्म।
   च. संयुक्ताक्षर में द्वितीय 'र' सामान्य रूप से लिखा जाय; यथा- प्र, त्र।
   छ. संयुक्ताक्षर में भी, सर्वत्र , वर्ण उच्चारण–क्रम से एक के पीछे एक लिखे जायें। यथा-द्वारका (द्वारका नहीं), विद्वत्ता (विद्वत्ता नहीं)।
3. स्वरों और मात्राओं में समानता तथा सामंजस्य करने के लिए 'इ, ई, उ, ऊ' के वर्तमान रूप छोड़कर केवल 'अ' में ही इन स्वरों की मात्रायें लगाकर इन स्वरों के मूल स्वरूप का बोध कराया जाय। अर्थात् 'अ' की बारहखड़ी की जाय; यथा-अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, अं, अः।
4. दक्षिण की लिपियों के स्वरों में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' के स्वरूप आते हैं, उनके लिए स्व मात्राएँ बनाई जायें।
5. पूर्ण अनुस्वार के स्थान पर 'O' लगाया जाय और अनुनासिक के लिए केवल बिंदी '। ' लिखी जाय; यथा -सह, चांद। व्यंजन के पूर्व हलंत 'ङ, ञ, ण, न, म' की जगह पर जहाँ प्रतिकूलता न हो (यथा वाङ्मय, तन्मय) अनुस्वार लिखा जाय; यथाचंचल आदि।
6. छपने में अक्षरों के नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थान पर बिंदी लगाई जाय तो उसका अभिप्राय होगा कि उस अक्षर की ध्वनि उस अक्षर की मूल ध्वनि से भिन्न है। उस ध्वनि का निर्णय प्रचलन के अनुसार होगा; यथा फ, ष, र, सी, क, ष, इत्यादि।
7. विराम चिह्न आजकल सब भारतीय भाषाओं में प्रचलित हैं, वैसे ही कायम रखे जायें; पूर्ण विराम का चिह्न पाई '।' रहे।
8. अंकों के स्वरूप इस प्रकार रहें-

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।

9. वर्तमान 'र व' के स्वरूप का परिवर्तित करना आवश्यक है। उसके स्थान पर गुजराती 'ख' स्वीकार किया जाय।

10. अ, झ, ण की जगह बंबई के अ, झ, ण रखे जायँ और 'ल' 'श' की जगह हिंदी के रूप 'ल' 'श' रखे जायँ। 'क्ष' का 'क्ष' रूप प्रचलित किया जाय। बीजगणित आदि वैज्ञानिक साहित्य में संज्ञारूप 'क्ष' आ सकता है।

11. मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, आदि भाषाओं में विशिष्ट ध्वनि के लिए जो ळ प्रयुक्त होता है वही रखा जाय। ड या ल से न व्यक्त किया जाय।

12. ज्ञ के उच्चारण में प्रांतीय भिन्नता होने से ज्ञ का रूप जैसा है वैसे ही रखा जाय।

13. संयुक्त अक्षरों को बनाने के लिए जिन वर्णों में खड़ी पाई अंतिम भाग में है जैसे- ख, ग, घ, च, ज, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स उनका संयोज्य रूप खड़ी पाई हटा कर समझा जाय-ख्, ग्, घ्, च्, त्, थ्, न्, ण्, ध् इत्यादि। क और फ का वर्तमान संयोज्य रूप क्, फ् स्वीकृत किया जाय। जिन अक्षरों में खड़ी पाई अंतिम भाग में नहीं है उनका संयोज्य रूप चिह्न (–) लगाकर समझा जाय। संयोजक चिह्न पिछले अक्षर से मिला रहे। यथा-विद्–या, विट्–ठल, उच्छ्–वास, बुड्–ढा, ब्रह्–मा।

14. शिरोरेखा हटाकर लिखने में भ और ध को म और घ से पृथक् करने हेतु भ और ध में गुजराती की तरह घुंडी लगाई जाय।

ऊपर के सुझावों का व्यावहारिक प्रयोग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, द्वारा संचालित परीक्षाओं तथा वहाँ से प्रकाशित पुस्तकों में तो हुआ, किंतु जिन प्रदेशों में काव्यभाषा तथा साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी का प्रसार था, वहाँ ये सुझाव स्वीकृत न हो सके। इसका सर्वाधिक विरोध तो काशी के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हुआ और इसके विरोधियों में प्रमुख स्थान नागरी प्रचारिणी सभा के सदस्यों का था। सम्मेलन के ऊपर के सुझावों में से अधिकांश व्यावहारिक थे, किंतु उस समय प्रचारिणी सभा तो किसी भी प्रकार के सुधार के लिए तैयार न थी।

काशी सम्मेलन के ठीक 10 वर्ष बाद, 1945 में न जाने किस प्रेरणा से नागरी प्रचारिणी सभा ने यह निश्चय किया कि उपयोगिता और प्रचार की दृष्टि से वर्तमान नागरी लिपि में सुधार और पुनःसंस्कार की आवश्यकता है। इसके साथ ही सभा ने सुधार के संबंध में कतिपय सिद्धांत भी निर्धारित किए और अपनी ओर से देश के प्रमुख हिंदी पत्रों में यह सूचना प्रकाशित की कि इस दिशा में कार्य करनेवाले सज्जन, और संस्थायें अपने–अपने प्रयत्न की सूचना और सामग्री सभा की समिति के पास भेजने की कृपा करें। यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि सुधार के प्रयत्नों में केवल श्री श्रीनिवासन का प्रयत्न ही समिति को विशेष संगत प्रतीत हुआ। श्री श्रीनिवासन ने बड़े प्रयत्न से अपनी प्रस्तावित वर्णमाला में एकरूपता लाने का उद्योग किया, किंतु फिर भी इस लिपि में अनेक त्रुटियाँ हैं। आपके प्रस्तावित सुधार में सबसे पहली त्रुटि यह है कि इसमें नागरी के अनेक वर्णों का रूप विकृत हो गया है। आपने अपनी वर्णमाला में समूचे अ की बारहखड़ी नहीं की है। जो विज्ञान और व्यवहार दोनों की दृष्टि से भ्रामक और अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त अल्पप्राण वर्ण में ही प्राण जोड़कर आप महाप्राण बनाते हैं। यह प्राण चिह्न इतना सूक्ष्म है कि उसके स्पष्ट न होने पर कुछ का कुछ पढ़ा जा सकता है।

छपाई को दृष्टि में रखकर डॉ. गोरखप्रसाद ने भी कतिपय व्य वहारिक सुझावरखे थे। आपका पहला प्रस्ताव यह है कि उ, ऊ, ए, ऐ, तथा अं की मात्राओं को थोड़ा सा दाहिनी ओर हटाकर लगाया जाय। इससे यह लाभ होगा कि 700 के बदले केवल 150 या यदि सभी वर्तमान संयुक्ताक्षर रखे जायँ तो 200 टाइपों से कम्पोजिंग हो जाया करेगी। वर्तमान टाइपों से भी, बिना उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन किए, इतने में कम्पोजिंग का काम चल सकेगा। डॉ. प्रसाद का दूसरा सुझाव यह है कि छोटे (8 पाइंट से कम नाप के) अक्षरों से कम्पोज करने में शिरोरेखाविहीन अक्षरों से काम लिया जाय। आपने इस प्रकार के टाइप तैयार कर नमूने के लिए छपाई भी की है। इसमें संदेह नहीं कि इन छोटे टाइपों के अक्षर स्पष्ट हैं और उन्हें पढ़ने में कठिनाई नहीं होती। इस टाइप में कोश आदि छापने में उनका मूल्य आधा हो जायगा और छपाई के संसार में क्रांति मच जायेगी। आपके इस सुझाव में इसके अतिरिक्त कोई त्रुटि नहीं है कि शिरोरेखाविहीन नागरी लिपि सुंदर नहीं प्रतीत होती।

17.5 सारांश

उपरोक्त वर्णित इकाई में लिपि संबंधित ज्ञान आपको प्राप्त हुआ होगा। लिपि के विकास को आप भली–भाँति समझ गए होंगे। ब्राह्मी, खरोष्ठी और देवनागरी लिपि के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त हुई होगी, जो भाषा शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इस बात से आप पूरी तरह अवगत हो गए होंगे की कोई भी लिपि अपने आप में पूर्ण नहीं होती है, उसमें सुधारों की भी आवश्यकता होती है। जिससे कि उस लिपि में किसी प्रकार की कोई त्रुटि न रह जाए।

17.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान– डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहबाद
2. तुलनात्मक भाषा विज्ञान –पी.डी. गुणे
3. प्राचीन लिपि माला– गौरीशंकर हीराचंद ओझा
4. आधुनिक भाषाविज्ञान की भूमिका – मोतीलाल गुप्त
5. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6. भाषाविज्ञान की भूमिका– देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं दीप्ती शर्मा, राधाकृष्ण, नई दिल्ली

17.7 अभ्यास प्रश्न

सही अथवा गलत लिखें

1. ब्राह्मी लिपि भी सेमेटिक लिपियों की ही भाँति दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी।
2. खरोष्ठी लिपि में संयुक्त अक्षर बहुत कम होते थे।
3. बेबर और बूलर के अनुसार ब्रह्मी लिपि विदेशी अनुकरण नहीं है।
4. खरोष्ठी लिपि ब्राह्मी लिपि की भाँति वैज्ञानिक नहीं बन पाई।
5. भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी देवनागरी लिपि में नहीं है।

स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. खरोष्ठी लिपि का स्वतंत्र विकास ..... में हुआ।
2. ..... लिपि धीरे–धीरे लुप्त हो गई।
3. भारत की वर्तमान सभी लिपियाँ ..... लिपि की ही वंशज हैं।
4. भारत की राष्ट्रीय लिपि ..... नाम से जानी जाती है।
5. ..... स्वतंत्र लिपि है।
6. संस्कृत लेखन के लिए विदेशों में ..... लिपि का भी प्रयोग होता है।

एक शब्द में उत्तर दीजिए

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY